प्लेटो की द्वन्द्वात्मक पद्धति

सुकरात ने यह शिक्षा दी की बौद्धिक तथा शुभ जीवन व्यतीत करने के लिये, शुभ का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। उनके अनुसार किसी दार्शनिक का ज्ञान–सम्बन्धी विचार उसके सम्पूर्ण दर्शन का परिचायक होता है। प्लेटो का दर्शन भी पूर्णतया उनकी ज्ञान–मीमांसा पर आधारित है। ज्ञानमीमांसा के भीतर हम ज्ञान के उद्‌गम, स्वभाव, प्रामाण्य और उसकी सीमा निर्धारित करते हैं। प्लेटो का मत था कि यदि इन्द्रिय–प्रत्यक्ष को ज्ञान का मूल स्त्रोत मान लिया जाय तो सोफिस्टों का यह मत कि ''मानव सभी पदार्थों का मानदण्ड है'' या ''वास्तकि ज्ञान असम्भव है'' बिल्कुल यथार्थ हो जायगा। इन्द्रिय–प्रत्यक्ष हमें केवल विवर्त का ज्ञान प्राप्त कराता है; इससे वस्तुओं के वास्तविक स्वभाव का ज्ञान होना सम्भव नहीं। इन्द्रिय–प्रत्यक्ष ज्ञान एक व्यावहारिक ज्ञान है, जो यथार्थ हो सकता है और अयथार्थ भी। व्यावहारिक ज्ञान कभी भी पारमार्थिक ज्ञान का स्थान नहीं ले सकता, क्योंकि बुद्धि की अपेक्षा यह भावनाओं पर आधारित होता हैं। वास्तविक ज्ञान हमें बुद्धि या प्रज्ञा से ही प्राप्त हो सकता है, परन्तु इन्द्रिय–प्रत्यक्ष ज्ञान से पारमार्थिक ज्ञान की ओर अग्रसर होने के लिए सत्यनिष्ठा परमावश्यक है। सत्यनिष्ठा, सौन्द्रर्य–चिन्तन से उत्पन्न होती है, जो सत्य के अनुसंधान के लिए प्रेरित करती है। इसके अलावा सत्यनिष्ठा हमें द्वन्द्वात्मक तर्क के लिए भी प्रेरित करती है, जिसका परिणाम सत्य की प्राप्ति होता है। प्लेटो के अनुसार द्वन्द्वात्मक पद्धति के निम्न चार चरण होते हैंः–

1. प्रथम चरण में हम विभिन्न विविक्त विशेषों को एक विज्ञान के अन्तरस्थ करते हैं अर्थात् सामान्यीकरण।
2. द्वितीय चरण में विज्ञान को उसकी उपजातियों में वर्गीकृत किया जाता है अर्थात् वर्गीकरण।
3. तीसरा चरण तर्क–वाक्यों का है, जिसमें हम एक प्रत्यय का दूसरे प्रत्यय के साथ सम्बन्ध स्थापित कर तर्क–वाक्यों का निर्माण करते हैं अर्थात् तर्कवाक्य।
4. चतुर्थ चरण में कई तर्कवाक्यों को परस्पर सम्बद्ध कर निगमनात्मक अनुमान का निर्माण किया जाता है, जिससे कि हम किसी निर्णय पर पहुँच सकें अर्थात् निगमानात्मक अनुमान।

प्लेटो की दर्शन–पद्धति द्वन्द्वात्मक है, जो वाद–विवाद अथवा प्रश्नोत्तर की पद्धति है। कभी–कभी समान्य प्रत्ययों के माध्यम से चिन्तन करने की पद्धति को भी द्वन्द्वात्मक तर्क कहते है। इन्द्रिय–संवेदनों की अपेक्षा विज्ञान ही हमारे ज्ञान के एक मात्र विषय हैं। हम किसी को न्यायी अथवा अन्यायी तब तक नहीं कह सकते जब तक कि हमारे भीतर 'न्याय' का प्रत्यय पहले से ही वर्तमान न हो। इस प्रकार प्लेटो, अरस्तू के पूरोगामी दार्शनिक बने।

यहाँ पर ध्यान देने की बात है कि प्लेटो के अनुसार विज्ञान अनुभवजन्य नहीं होते। जैसे हम 'न्याय' के विज्ञान का ज्ञान न्याय के विशिष्ट प्रकरणों के आकलन द्वारा नहीं प्राप्त करते। न्याय के विभिन्न प्रकरण जो हमें अनुभव द्वारा प्राप्त होते हैं, आत्मा के भीतर पूर्व–स्थित न्याय के विज्ञान को जागरित करते है; वे उसे उत्पन्न नहीं करते। प्लेटो के अनुसार ज्ञान (जो विज्ञान रूप है) आत्मा का स्वाभाविक गुण है; वह कहीं बाहर से नहीं आता। वह ज्ञान को केवल 'विकसित' करता है, उत्पन्न नहीं।

इस प्रकार प्लेटो, जर्मनी के महान दार्शनिक काण्ट के भी पुरोगामी बने। प्लेटो के अनुसार 'विज्ञान' अनुभवजन्य नहीं हैं, क्योंकि हमारे अनुभवों में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिनके साथ सत्यं–शिवम्–सुन्दरम् की पूर्ण संगति स्थापित की जा सके। बिन्दु, रेखाएँ, समतल, ठोस पिण्ड़ इत्यादि विज्ञान–मात्र ही हैं, क्योकि जगत् में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जिसे हम पूर्ण बिन्दु, रेखा, समतल या ठोस पिण्ड कह सकें।

अतः विज्ञान अनुभव जन्य नही है। इतना होते हुए भी हम जगत् का साक्षात्कार सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम् के आदर्शों अथवा मानदण्ड़ों के माध्यम से करते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम् के ये मानदण्ड इन्द्रियजन्य न होकर बुद्धिजन्य हैं। प्लेटों के अनुसार उन मानदण्डों के अतिरिक्त सत्, असत्, भेद, अभेद, एकता, अनेकता, इत्यादि के मानदण्ड भी अनुभवनिरपेक्ष अथवा बुद्धिजन्य हैं।

0000